Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
July - December 2021 2(2), 73-78

THE PLACE OF RAGANG IN INDIAN RAGADARI MUSIC
भारतीय रागदारी संगीत में रागांग का स्थान

Sharmila Taylor [1], Poonam Rani [2]

[1, 2] Music Department Banasthali Vidyapeeth Rajasthan, India

ABSTRACT

English: Various classification methods have been adopted from time to time to give a simple and systematic form to Indian ragdari music. An important dimension of this series of classification is 'Raganga-Raga Classification System'. As the name suggests, the raga of the raga is 'ragang', that is, that particular melody of a particular raga, which represents the raga and gives a personal identity, that is 'ragang' and 'ang' means the form of the raga. Certain swar communities and their inherent rhythm-transmission and various musical ornamentation such as meed, kan, gamak etc. are from specific components, from which the distinctive form of the raga emerges.

Hindi: भारतीय रागदारी संगीत को एक सरल एवं सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने हेतु समयानुसार विभिन्न वर्गीकरण पद्धतियों को अपनाया गया है। वर्गीकरण की इसी श्रृंखला का एक महत्वपूर्ण आयाम है - 'रागांग-राग वर्गीकरण पद्धति'। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है कि राग का अंग 'रागांग' है, अर्थात् किसी राग विशेष की वह विशिष्ट स्वरावलि, जिससे राग का प्रतिनिधित्व हो और एक निजी पहचान प्राप्त हो वह 'रागांग' है तथा 'अंग' का अभिप्राय राग के कुछ निश्चित स्वर समुदायों व उसमें निहित लय-संचरण एवं विभिन्न सांगीतिक अलंकरण यथा - मीड़, कण, ग़मक आदि विशिष्ट अवयवों से हैं, जिससे राग का विशिष्ट स्वरूप उभर कर आता है।

Keywords: Place, Ragang, Indian Ragadari, Music, जगह, रागांग, भारतीय रागादरी, संगीत

Received 08 August 2021
Accepted 30 August 2021
Published 27 September 2021

Corresponding Author
Prof. Sharmila Taylor,
siffmusic13@gmail.com

DOI
10.29121/shodhkosh.v2.i2.2021.34

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2021 The Author(s). This is an open access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License, which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

OPEN ACCESS

1. प्रस्तावना

''जिस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसके आचार-विचार का ज्ञान तभी होता है, जब वह गतिशील हो, वाद-संवाद करते हुए उसकी आंतरिक प्रवृति का परिचय मिलता है, उसी प्रकार स्वरों के परस्पर स्वर संयोग, उनकी प्रयोगात्मकता, स्वर संचालन में प्रयुक्त गति, संगीत अलंकरण तथा राग के आमुख के रूप में प्रयुक्त राग के विशिष्ट स्वर समुदायों का चलन ही राग को विशिष्ट आकार एवं स्वरूप प्रदान करता है। राग के विशिष्ट अंगों एवं अंग संचालन के आधार पर किया गया वर्गीकरण ही आधुनिक काल में रागांग वर्गीकरण' के नाम से जाना जाता है।''Saxena et al. (2000) प्रस्तुत शोध पत्र में 'रागांग' पद्धति के कुछ विशिष्ट पहलुओं पर ही प्रकाश डाला जा रहा है।

विद्वानों के मतानुसार सर्वप्रथम 'रागांग' का उल्लेख मतंगकृत बृहद्देशी ग्रंथ के 'रागाध्याय' में इस प्रकार मिलता है -''रागांगादिनी देशी रागा इति इत्युच्यते''Singh (n.d.) अर्थात् रागांगादि रागों को 'देशी राग' कहा जाता था।

''ग्रामोक्तानाम् तु रागाणाम् छायामात्रम् भवेदिती।
गीतज्ञैः कथिताः सर्वे रागांगास्तेन हेतुना।।''Singh (n.d.)

अर्थात् जिन रागों में ग्राम राग की छाया दिखाई दे, परंतु ग्राम राग के नियमों को भंग करके कुछ मिश्रण अथवा परिवर्तन करके जिन रागों की निर्मिति की जाये उन्हें ही 'रागांग' वर्ग के अंतर्गत वर्गीकृत किये जाने का विधान था। पं. शारंगदेव ने भी मतंग मुनि के विचारों का ही अनुसरण किया है, परंतु उन्होंने देशी रागों में रागांग, भाषांग व क्रियांग के साथ-साथ उपांग को भी सम्मिलित किया है। उन्होंने 8 पूर्वांग प्रसिद्ध तथा 13 अधुना प्रसिद्ध इस प्रकार से कुल 21 रागांगों का उल्लेख किया है। परंतु उन्होंने इन राग प्रकारों में पारस्परिक समानता का कोई उल्लेख नहीं किया है। लेकिन रागों के नामानुसार उनमें अंग साम्यता का कुछ न कुछ अंदाजा अवश्य लगाया जा सकता है। पाश्र्वदेवकृत 'संगीतसमयसार' ग्रंथ में 'रागांग' के उल्लेख में कहा गया है - ''रागच्छायानुकारित्वात् रागांगनि विदुर्बुधाः।'' Brihaspati (1977)

'रागांग' के संदर्भ में पं. भावभट्ट कृत 'अनूपसंगीत रत्नाकर' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में उन्होंने बहुत ही सुनियोजित ढंग से 18 मुख्य रागों में 148 रागों को अंगों के आधार पर वर्गीकृत किया है और उन्हें भेद की संज्ञा दी है, जो इस प्रकार हैं -

नाट - 16 भेद	आसावरी - 3 भेद	कर्णाट - 14 भेद
केदार - 3 भेद	कल्याण - 13 भेद	विहंगड़ा - 2 भेद
बिलावल - 16 भेद	सारंग - 3 भेद	तोड़ी - 9 भेद
भैरव - 10 भेद	गौरी - 8 भेद	कामोद - 7 भेद
गौड़ - 10 भेद	गुर्जरी - 7 भेद	वराटी - 10 भेद
सैंधवी - 7 भेद	पूरिया - 7 भेद	मल्लारी - 3 भेद

उपरोक्त भेद पद्धति में से कुछ प्रकार आज भी 'रागांग पद्धति' में प्रचलित हैं, यथा - कल्याण अंग, बिलावल अंग, तोड़ी अंग, सारंग अंग, भैरव अंग, आसावरी अंग, मल्लार अंग आदि। अतः वर्तमान में 'रागांग पद्धति' के प्रादुर्भाव की प्रथम कड़ी उक्त ग्रन्थ को मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है। इसी प्रकार से किंचित् अन्य ग्रंथकारों ने भी 'रागांग' का उल्लेख किया है। इन सभी ग्रंथो से प्राप्त 'रागांग' संबंधी तथ्यों से यह विदित होता है कि 'अंग' के आधार पर राग वर्गीकरण की इस नवीन पद्धति का अस्तित्व प्राचीन तथा मध्यकाल में भी दिखाई देता है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'रागांग पद्धति' जिस प्रकार वर्तमान में राग वर्गीकरण के आधार हेतु प्रचलित है, कदाचित् उस रूप में नहीं रही होगी, तथापि विभिन्न ग्रंथों से प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यह अनुमान तो लगाया जा सकता है कि कहीं न कहीं उन रागांगों का भी आज की 'रागांग पद्धति' से साम्य अवश्य ही रहा होगा।

आधुनिक काल में 'रागांग' को एक व्यवस्थित पद्धति के रूप में स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय 'पं. नारायण मोरेश्वर खरे' जी को दिया जाता है। उन्होंने 'थाट-राग' व्यवस्था की किंचित् विसंगतियों का समुचित हल निकालने की दृष्टि से रागों का वर्गीकरण स्वर साम्यता की अपेक्षा स्वरूप साम्यता के आधार पर किया और एक नवीन पद्धति की संकल्पना की, जिसे 'रागांग-राग वर्गीकरण' पद्धति नाम दिया। खरे जी के अनुसार ''बहुत-सी स्वर रचनायें स्वतंत्र होती हैं, जिनमें विशेष प्रकार के भाव अथवा रस का आविर्भाव होता है। ऐसी रचनाओं में आरोह-अवरोह, वादी-संवादी आदि के हस्वत्व, दीर्घत्व तथा अल्पत्व और बहुत्व का नियम अच्छी तरह पाला जाता है। ऐसी स्वर रचनाओं में पूर्वांग के स्वर उत्तरांग के स्वरों के साथ पूर्णतया संबंध रखते है। ऐसी स्वर रचना वाले रागों को स्वयं राग कहना चाहिए और इन स्वतंत्र रागों की छाया जिन रागों में हो, उन्हें 'रागांग' कहना चाहिए।'' Rao (1964) उनके मतानुसार ''किसी राग की विशिष्ट स्वर रचना जब सामान्य रूप से अन्य अनेक रागों में प्रयुक्त होती है, तो उन रागों को एक वर्ग में निहित किया जा सकता है और मुख्य राग को अंगभूत राग के रूप में विशिष्ट माना जा सकता है। उन्होंने हिंदुस्तानी संगीत के समस्त रागों को 26 रागांगों के अंतर्गत वर्गीकृत किया है।''Saxena et al. (2000)

थाट पद्धति के जनक कहे जाने वाले 'पं. विष्णु नारायण भातखण्डे' जी ने भी 'रागांग' के महत्व को नकारा नहीं है। उनके द्वारा बताए गए 10 थाट अपने आप में 'रागांग' राग ही है। यद्यपि उन्होंने रागों को 10 थाटों के अंतर्गत वर्गीकृत किया है, तथापि 'रागांग' को महत्व देते हुए ही उन्होंने राग 'मालकौंस' को आसावरी थाट में न रख कर भैरवी थाट के अंतर्गत माना है। साथ ही उन्होंने काफी थाट के अंतर्गत काफी, धनाश्री, सारंग, कानड़ा व मल्हार इन पाँच अंगों का उल्लेख भी किया है। 'रागांग' को श्री कृष्णा बिष्ट ने बहुत ही सुंदर शब्दों में इस प्रकार बताया है -

"just as the idiom and not merely grammer makes a language, so also it is the Anga and not merely the scale of a Raga that is its distinguishing feature."Bisht (n.d.)

अर्थात् जिस प्रकार केवल व्याकरण से भाषा नहीं बनती, मुहावरों से भाषा बनती है; उसी प्रकार केवल स्वर सप्तक से नहीं, अपितु 'अंग' द्वारा किसी भी राग का निर्धारण या खड़ा किया जा सकता है। उन्होंने 'रागांग' के विषय में यह भी कहा है कि ''आज 'रागांग', राग के अंतर्गत प्रयुक्त होने वाले उस विशिष्ट स्वर समुदाय से है जो किसी खास राग की एक खास पहचान बन जाता है, फिर यही राग वाचक अंग कहलाने लगता है। जैसे - केवल 'नि प, ग म रे सा', इन स्वरों से 'कान्हड़ा' का बोध होने लगता है और यह अंग कान्हड़ा के लगभग सभी प्रकारों में दिखाई देता है। इसी प्रकार 'सा, रे, ग, प, ध', स्वरों से 'भूपाली', 'देशकार', 'जैत कल्याण', 'शुद्ध कल्याण' आदि रागों का रूप झलकने लगता है। दक्षिणी संगीत में ऐसा दिखाई नहीं देता, वहाँ एक स्वरावलि से केवल एक ही राग बनता है। जैसे - उपर्युक्त (सा रे ग प ध) स्वरावलि से वहाँ केवल 'मोहनम्' राग ही बनता है। जबकि उत्तरी संगीत पद्धति में केवल एक ही स्वरावलि का प्रयोग कई रागों में दिखाई देता है। जैसे - 'सा रे ग मे ध नि' यह स्वरावलि 'पूरिया', 'मारवा', 'सोहनी' को उत्पन्न करती है। 'भैरव' की स्वरावलि 'सा रे ग म प ध नि' 'भैरव', 'कालिंगड़ा', 'गौरी' में है। 'मेघ मल्लार' और 'मधुमाद सारंग' में भी एक ही स्वरावलि 'सा रे म प नि' प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार 'सा रे म प ध' यह औडव स्वरावलि 'दुर्गा' में भी है और 'शुद्ध मल्लार' में भी है। यह केवल खास अंगों की विशेषता के कारण ही सम्भव हुआ है।''Jain (2006)

बहुधा यह देखा गया है कि जिस विशिष्ट अंग की झलक किसी राग में विशेषतया दृष्टिगोचर होती है, उसी राग विशेष के नाम पर उस मुख्य अंग को अभिहित किया जाता है। जैसे - 'रे ग रे सा' स्वर-समूह राग 'तोड़ी' का मुख्य अंग है तथा विशेष रूप से इस स्वर संगति का प्रयोग राग 'तोड़ी' में किया जाता है, इसलिए इस अंग को 'तोड़ी' अंग के नाम से जाना जाता है। अब जिन अन्य रागों में यह अंग प्रयुक्त होता है, उन सभी रागों में भी अक्सर उक्त अंग के नाम का समावेश पाया जाता है। जैसे 'तोड़ी' अंग का मुख्य राग 'तोड़ी' है, इसके अतिरिक्त इसके अन्य प्रकार 'गुर्जरी तोड़ी', 'भूपाल तोड़ी' व 'बिलासखानी तोड़ी' में भी तोड़ी शब्द प्रयुक्त हुआ है। परंतु इसमें कोई कठोर नियम नहीं है, क्योंकि बहुत से राग ऐसे भी हैं जो उस 'रागांग' नाम के बिना भी 'रागांग' युक्त पाए जाते हैं। जैसे - राग 'मुल्तानी', 'रामकली' आदि। अतः किसी राग में प्रयुक्त 'रागांग' की मुख्य रूप से पहचान उसमें प्रयुक्त विशिष्ट स्वर-समुदायों पर निर्भर करती है, न कि उसके नामकरण पर। 'रागांग' की यह प्रमुख विशेष ता है कि दो रागों के स्वरों में समानता होने पर भी केवल भिन्न 'रागांग' होने से दोनों रागों में विभिन्नता आ जाती है। यथा - 'मेघ मल्हार' व 'मधुमाद सारंग' इन दोनों रागों की स्वरावली समान होते हुए भी 'मेघ मल्हार', 'मल्हार' अंग का होने के कारण 'मधुमाद सारंग' से पृथक हो जाता है। इसी प्रकार से 'बिलासखानी तोड़ी' और 'कोमल ऋषभ आसावरी' के स्वर भी समान है, लेकिन राग 'बिलासखानी तोड़ी', 'तोड़ी' अंग होने से 'कोमल ऋषभ आसावरी' से भिन्न हो जाता है। इसी भाँति राग 'भैरव-कालिंगड़ा', 'भूपाली-देशकार' तथा 'मारवा-पूरिया-सोहनी' आदि कई उदाहरण देखे जा सकते है। पं. नारायण मोरेश्वर खरे द्वारा बताए गए 26 'रागांग' तथा उनमें समाविष्ट कुछ प्रमुख राग इस प्रकार है -

राग	रागांग
1) भैरव -	भैरव, कालिंगड़ा, जोगिया, गुणक्री, गौरी, शिवमत भैरव, रामकली, अहीरभैरव, प्रभातभैरव, मंगलभैरव, शोभावरी आदि।

2) बिलावल - शुद्ध बिलावल, अल्हैया बिलावल, सरपरदा बिलावल, कुकुभ बिलावल, लच्छासाख बिलावल, शुक्ल बिलावल, यमनी बिलावल, देवगिरी बिलावल आदि।
3) कल्याण - कल्याण, शुद्ध कल्याण, यमन, चन्द्रकान्त, पहाड़ी, हेमकल्याण, जयन्तकल्याण आदि।
4) खमाज - खमाज, झिंझोटी, तिलंग, मांड, खंबावती।
5) काफ़ी - काफ़ी, सिंधूरा, आनन्दभैरवी आदि।
6) पूर्वी - पूर्वी, पूरियाधनाश्री, परज आदि।
7) मारवा - मारवा, भटियार, भंखार, पूरिया आदि।
8) तोड़ी - मियाँ की तोड़ी, गुर्जरी तोड़ी, बिलासखानी तोड़ी, छाया तोड़ी, मुल्तानी आदि।
9) भैरवी - भैरवी, मालकंस, सिंधु भैरवी आदि।
10) शंकरा - शंकरा, मालश्री, बिहाग, हंसध्वनि आदि।
11) कान्हड़ा - दरबारी कान्हड़ा, अड़ाना, सुघराई, शहाना, सूहा, नायकी, गुंजी कान्हड़ा, शुद्ध कान्हड़ा, हुसैनी कान्हड़ा, कौसी कान्हड़ा और आभोगी कान्हड़ा आदि।
12) मल्हार - मियां की मल्हार, रामदासी मल्हार, सूर मल्हार, गौड़ मल्हार, मेघ मल्हार, नट मल्हार, शुद्ध मल्हार आदि।
13) हिंडोल - हिंडोल, सोहनी, भिन्नषड्ज आदि।
14) भूपाली - भूपाली, देशकार, जैत आदि।
15) आसा - आसा, दुर्गा आदि।
16) आसावरी - आसावरी, जौनपुरी, गान्धारी, देवगंधार, कोमल आसावरी तथा देशी आदि।
17) सारंग - वृन्दाबनी सारंग, शुद्ध सारंग, मधुमाद सारंग, सामंत सारंग, मियां की सारंग आदि।
18) धनाश्री - धनाश्री, भीमपलासी, धानी, पटदीप, प्रदीपकी, हंसकिंकणी आदि।
19) ल्लित - ललित, बसंत, पंचम, ललितागौरी आदि।
20) पीलू - पीलू, बरवा आदि।
21) सोरठ - सोरठ, देश, तिलककामोद, जैजैवन्ती आदि।
22) विभास - विभास, रेवा, जैतश्री आदि।
23) नट - शुद्धनट, छायानट आदि।
24) श्री - श्री, त्रिवेणी, चैती, दीपक आदि।
25) बागेश्री - बागेश्री, रागेश्री, बहार, कौसी कान्हड़ा आदि।
26) केदार - केदार, केदारनट, कामोद, जलधर केदार आदि।''Saxena (2000)

स्थूल रूप से यदि 'रागांग' की बात करे तो कहा जा सकता है कि 'रागांग' का अभिप्राय है - रागांग का विशिष्ट एवं आवश्यक स्वर समुदाय। परंतु यदि सूक्ष्मावलोकन करें तो ज्ञात होता है कि किसी राग विशेष के आवश्यक स्वर-समुदायों के साथ-साथ कुछ अन्य सांगीतिक तत्त्व भी हैं, जो उसमें निहित होकर एक विशिष्ट रागांग का निर्माण करते हैं। ये सांगीतिक तत्त्व स्वर स्थान, कण स्वर, मीड़, ग़मक, न्यास इत्यादि हैं। 'रागांग' की निर्मिति हेतु उक्त सभी सांगीतिक अलंकरण महत्वपूर्ण कारक है।

उत्तर भारतीय संगीत में स्वरों की शुद्ध, कोमल व तीव्र अवस्था के अलावा स्वरों की अतिकोमल व चढ़ी हुई अवस्था भी अक्सर सुनने में आती है। ये 'स्वर स्थान' भी किसी राग विशेष के स्वर समुदायों को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करने में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए राग 'दरबारी' में अतिकोमल गंधार प्रयुक्त किया जाता है। यदि इसमें अतिकोमल गंधार के स्थान पर केवल कोमल गंधार प्रयोग किया जाएगा तो वह कथित रागरस के साथ न्याय संगत नहीं होगा। इसी प्रकार से 'कण स्वर' का भी 'रागांग' में विशेष महत्व है। यथा - 'कान्हड़ा' व 'सारंग' में 'नि प' स्वर संगति का जो आपसी सामंजस्य है, वह 'कण स्वर' के कारण ही दिखाई देता है। 'सारंग' अंग के निषाद को 'नि प' की भाँति बिना कण के उच्चारित किया जाता है, जबकि 'कान्हड़ा' में निषाद को पंचम

के कण से 'सां पनि प' की भाँति लिया जाता है। अतः 'कान्हड़ा' व 'सारंग' के 'नि प' में स्वर लगाव तथा उच्चारण का जो भेद है, वह 'कण स्वर' से ही होता है।

'रागांग' निर्धारण में 'ग़मक' के महत्व को डॉ. कृष्णा बिष्ट ने इस प्रकार बताया है - "Megh should have gamak (in the modern sence) to keep it distinct from Madhyamad sarang."Bisht (n.d.) भावार्थ यह है कि समान स्वरावलि वाले रागों को 'ग़मक' के आधार पर भी स्वर भिन्नता प्राप्त होती है। इसी प्रकार से 'मीड़' का प्रयोग भी 'रागांग' को एक समुचित आकार देने में सहायक तत्त्व है। यथा - 'कल्याण' में 'प रे' की मीड़ व 'हिंडोल' में 'ध सां' की मीड़ 'रागांग' वाचक तत्त्व है। इस प्रकार इन सभी सांगीतिक तत्त्वों के समावेश से किसी राग विशिष्ट का अंगवाचक स्वर समुदाय निर्मित होता है, जो किसी राग विशेष का प्रतिनिधित्व कर उसे अस्तित्व प्रदान करता है।

''आधुनिक काल में विद्वानों द्वारा रागांग वर्गीकरण पद्धति को सर्वाधिक मान्यता दी गई है। रागांग पद्धति स्वर साम्य की अपेक्षा स्वरूप साम्य पर आधारित है, क्योंकि राग की सामान्य पहचान तो स्वरों द्वारा हो जाती है, परंतु सूक्ष्म पहचान विशिष्ट स्वर समूहों द्वारा ही संभव है।''Sharma (2011) आजकल विभिन्न शिक्षण संस्थानों में संगीत विषय में 'रागांग पद्धति' को पाठ्यक्रमानुसार अपनाया जा रहा है। शास्त्र पक्ष के साथ-साथ क्रियात्मक रूप से भी रागों का चयन 'रागांग' के आधार पर किया जाने लगा है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में आजकल एम. ए, एम. फिल कक्षाओं के पाठ्यक्रम में 'रागांग' को प्राथमिकता दी जा रही है। जैसे - 'बनारस हिंदु विश्वविद्यालय', 'वनस्थली विद्यापीठ', 'पंजाब विश्वविद्यालय', 'मुंबई विश्वविद्यालय', 'चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय' तथा आगरा विश्वविद्यालय इत्यादि। संस्थागत शिक्षा के अतिरिक्त अब ख्याति प्राप्त मंचीय कलाकार भी अपने प्रस्तुतिकरण में 'रागांग' को विशेष स्थान दे रहे है, क्योंकि राग का प्रस्तुतिकरण तो उसमें निहित 'अंग' विशेष के आधार पर ही संभावित है। हालांकि 'थाट' भी राग का आधार है, परंतु 'रागांग' पर राग का सौंदर्य निर्भर करता है और सौंदर्य ही राग की पहचान है।

वर्तमान में विभिन्न गायक-कलाकारों एवं संगीत शास्त्रकारों ने अपनी-अपनी कृतियों में 'रागांग पद्धति' को पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। यथा - सुप्रसिद्ध गायक एवं शास्त्रकार 'पं. ओंकारनाथ ठाकुर' जी ने अपनी रचना 'संगीतांजलि' (भाग 1-6) में रागों का शास्त्रीय परिचय देते हुए उन रागों में निहित अंग विशिष्ट का भी वर्णन किया है। 'पं. विनायक नारायण पटवर्धन' जी ने 'राग विज्ञान' कृति के सभी भागों में रागों के थाट के स्थान पर उनके अंगों को लेकर चर्चा की है, साथ ही उन्होंने भाग-6 में पं. नारायण मोरेष्वर खरे द्वारा 'रागांग पद्धति' पर लिखित एक लेख को भी प्रकाशित करवाया है ताकि उसका लाभ संगीत जिज्ञासुओं को प्राप्त हो सके। इसी प्रकार से 'पं. रामाश्रय झां' कृत 'अभिनव गीतांजलि' (भाग 1-5) पुस्तक भी बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें उन्होंने रागों के शास्त्रात्मक परिचय में अंगों की चर्चा विशेष रूप से की है। इसी श्रृंखला में श्री 'कृष्णधन बनर्जी', 'पं. विनायक नारायण पटवर्धन', 'पं. रामाश्रय झां', 'पं. बसन्तराव राजोपाध्ये', 'पं. के. जी. गिंडे', 'पं. बी. आर. देवधर' आदि संगीतविदों के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने व्यवहारिक रूप से रागों के अंगों के विषय में चर्चा की है और 'रागांग' विषय को महत्व दिया है।

REFRENCES

Acharya, B. (1977). Sangeet Samaysar, Chaturthadhikaranam, Srikundakunda Bharathi' s Delhi, 74.

Bisht, K. (n.d.). Significance of Ragang in Hindustani Music, J.M.A.A, 210.

Bisht, K. (n.d.). Significance of Ragang in Hindustani Music, J.M.A.A, 215.

Jain, R. (2006). Swar and Raag, Kanishk Publishers, Distributors, New Delhi, 200.

Patwardhan, V.R. (1964). Raga Vigyan, Part-6, Shri Madhusudan Vinayak Patwardhan, Sangeet Gaurav Granthmala, Pune, 11.

Saxena, K. Bala, R. Dr. Madhubala, (2000). Sangeet Nikunj, Radha Publications, New Delhi, 62.

Saxena, K. Bala, R. (2000). Sangeet Nikunj, Radha Publications, New Delhi, 61.

Saxena, K. Bala, R. (2000). Sangeet Nikunj, Radha Publications, New Delhi 63-64.

Sharma, S. (2011). Obsolete Raga and Taal, Anubhav Publishing House, Allahabad, 316.

Singh, B.C. (n.d.). Sangeet Ratnakar, Part II, 16.